15

अर्थव्यवस्था, राज्यव्यवस्था और धर्म

संस्थाओं की संख्या के आधार पर समाजों में अन्तर होता है। अत्यधिक विकसित और विवेधीकृत समाजों, जैसे कि अर्वाचीन औद्योगिक दुनिया में होता है, जिसमें सामान्य समाजों, आदिवासियों और कृषकों की तुलना में अत्यधिक संस्थाएं होती हैं। जिस तरह से एक समायावधि में सामान्य समाज सरल से जटिल संरचना में बदलते हैं, उनकी संस्थाओं में भी विभेदीकरण हो जाता है। न केवल ये संस्थाएं अपनी संख्या में बढ़ जाती हैं, अपितु वे अधिक से अधिक विशिष्ट और जटिल हो जाती हैं।

यद्यपि एक समाज से दूसरे समाज में संस्थाओं की संख्या बढ़ जाती है, सभी समाजों में सामान्यतया चार बुनियादी संस्थाएं होती हैं, इन बुनियादी संस्थाओं को सार्वभौमिक संस्थाएं कहते हैं। ये संस्थाएं क्रम से नातेदारी, अर्थव्यवस्था, राज्यव्यवस्था और धार्मिक संस्थाएं हैं। ये संस्थाएं एक दूसरे से पृथक नहीं होती। होता यह है कि इन संस्थाओं में जुड़ाव होता है। इसे हम अवधारणात्मक रूप से एक ऐसी संस्कृति कहते हैं जो संस्थाओं से बनी होती है और जिनमें पारस्परिक सम्बन्ध होता है। संस्कृति की परिभाषा इस भाँति दी जा सकती है कि यह सभी संस्थाओं का एकीकृत रूप है। सामान्य शब्दों में, संस्कृति और कुछ न होकर अर्थव्यवस्था, राजनीति, और धर्म का मेल है। इस पाठ में हम मानव समाज की अर्थव्यवस्था, राज्यव्यवस्था और धर्म की संस्थाओं के लक्षणों का विवरण देंगे।

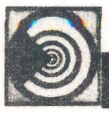

उद्देश्य

इस पाठ को पढ़ने के बाद आप :

- मानव समाज में पाई जाने वाली बुनियादी संस्थाओं का वर्णन कर सकेंगे;
- इनमें से प्रत्येक संस्था के लक्षणों को समझ सकेंगे; और
- संस्थाओं के बीच के सम्बन्ध जान सकेंगे।

15.1 अर्थव्यवस्था, राज्यव्यवस्था एवं धर्म की अवधारणाएं

15.1.1 अर्थव्यवस्था

अर्थव्यवस्था का तात्पर्य वस्तुओं और सेवाओं के उत्पादन, विनिमय, वितरण और उपभोग से है। यदि मनुष्यों को जीवित रहना है तब उन्हें खाना पड़ेगा एवं उपभोग करना पड़ेगा। मनुष्य अन्य पशुओं की तरह नहीं है जो प्रकृति और उसके कच्चे उत्पादों पर परजीवी होकर रहता है। मनुष्य अपने जीविकोपार्जन के लिए जिन वस्तुओं की आवश्यकता समझता है, उनका उत्पादन करता है। इतना ही नहीं वह कच्चे पदार्थों की प्रकृति को बदलकर उन्हें पकाता है और पकाने की प्रक्रिया में रखता है। मनुष्य का सबसे महत्वपूर्ण लक्षण यह है कि वह कच्ची उपज पकाता है। आग पैदा करना तथा आग द्वारा और कार्यों को करना मनुष्य जाति का विशेष लक्षण है।

अर्थव्यवस्था के साथ जुड़ी गतिविधियां दूसरे मनुष्यों के साथ सम्बन्ध रखती हैं। वस्तुओं का वितरण और विनिमय इस बात को मानकर चलता है कि मनुष्यों के बीच में परस्पर सम्बन्ध होते हैं। इन सम्बन्धों की दशाएं वस्तुओं के वितरण और विनिमय को निश्चित करती हैं। सम्बन्धों की प्रकृति वस्तुओं के वितरण और विनिमय की गुणवत्ता को निश्चित करती हैं। मानवीय सम्बन्ध और सामाजिक संबंध भी उपभोग के प्रतिमान को निश्चित करते हैं। दूसरे शब्दों में, अर्थव्यवस्था के समाजशास्त्रीय अध्ययन में हमारा सम्बन्ध उत्पादन व्यवस्था, वितरण, विनिमय तथा उपभोग में जहां सामाजिक सम्बन्ध है, उनसे होता है।

15.1.2 राज्य व्यवस्था

राज्य व्यवस्था का सम्बन्ध समाज में शक्ति के वितरण से है। प्रत्येक सामाजिक सम्बन्धों में कुछ वे लोग होते हैं, जो शक्ति का दूसरों पर प्रयोग करते हैं। यहां तक कि दो व्यक्तियों के समूह में भी, जिन्हें तकनीकी भाषा में युग्म कहते हैं, एक व्यक्ति दूसरे पर अपनी शक्ति का प्रयोग करता है। इस भांति, किसी भी मानव सम्बन्ध में शक्ति प्रदर्शन के बिना कुछ नहीं हो सकता। समाजशास्त्रियों के लिए, मानव समाज में सार्वभौमिक लक्षण शक्ति है।

अब हमें शक्ति के पद के समाजशास्त्रीय अर्थ को समझना चाहिए। शक्ति व्यक्ति की वह क्षमता है, जिसके द्वारा एक व्यक्ति दूसरे व्यक्ति पर अपना आदेश चलाता है। शक्ति व्यक्ति या समूह की वह योग्यता है जिस पर दूसरों के बारे में निर्णय लेता है और दूसरे लोग उनके बारे में लिए गये फैसले को स्वीकार करते हैं। इस तरह से परिभाषित करने पर यह निश्चित है कि समूह की प्रत्येक संस्था में शक्ति का स्थान केन्द्रीय होता है। उदाहरण के लिए, घर का मुखिया अपनी शक्ति का प्रयोग करता है और इस तरह उसके द्वारा लिए गये निर्णय सदस्यों के लिए अनिवार्य होते हैं। उदाहरण के लिए, चिकित्सा अधिकारी अपने अस्पताल में सबसे बड़ा शक्तिशाली व्यक्ति है। यह दृष्टान्त हमें यह निश्चित करने में सहायता करता है कि प्रत्येक संस्था में कुछ ऐसे व्यक्ति होते हैं जो दूसरों पर अपनी शक्ति का प्रदर्शन करते हैं।

और, राजनीतिक शक्ति के बारे में विशेष बात क्या है? एक संस्था में शक्ति (जैसे अस्पताल) या समूह (जैसे परिवार) और राजनीतिक शक्ति में जो अन्तर है, वह यह है कि राजनीतिक शक्ति का वृहद प्रयोग होती है। इसका सम्बन्ध संस्था या समूह से नहीं होता। राजनीतिक शक्ति सभी प्रकार के समूहों से होता है। राजनीतिक शक्ति सरकार चलाती है, जो समाज तथा उसकी गतिविधियों के मुख्य फैसलों से जुड़े होते हैं। उदाहरण के लिए, एक स्कूल का प्राचार्य स्कूल के अन्य लोगों और सम्पूर्ण स्कूल को चलाने स्कूल के लिए काम में लेता है। लेकिन स्कूल की यह शक्ति सरकार की नीति के हिस्से का एक अंग है। मतलब हुआ विद्यालय के प्राचार्य की शक्ति सरकार की शिक्षा नीति का एक अंग है।

राजनीतिक शक्ति का निकट सम्बन्ध राज्य के प्रशासन से है। इसका मतलब हुआ राज्य चलाना और प्रशासन करना। इटली के एक समाजशास्त्री (पेरेटो) ने अभिजन के दो प्रकार बताये हैं - एक अभिजन, वे उसे कहते हैं जो शासी है और दूसरे वे जो अपने क्षेत्र में श्रेष्ठ हैं। ये दूसरे प्रकार के शासी स्वयं प्रशासन नहीं करते लेकिन जो प्रशासन करने व हुकूमत चलाने में शक्तिशाली होते हैं इन्हें प्रशासकीय अभिजन कहते हैं।

> संगीतकार, पेन्टर, उद्योगपति आदि अप्रशासकीय अभिजन कहलाते हैं। इस तरह महाश्वेता देवी, मोहम्मद फिदा हुसैन, ए. आर. रहमान और अनिल अम्बानी अप्रशासकीय अभिजन हैं।

दूसरी ओर, प्रधानमंत्री, गृहमंत्री, मुख्यमंत्री, राज्यपाल आदि प्रशासकीय अभिजन हैं।

15.1.3 धर्म

अर्थव्यवस्था और राजनीतिक संस्थाओं की सार्वभौमिकता के बारे में कोई विवाद नहीं है। लेकिन धर्म की सार्वभौमिकता के सम्बन्ध में कई तर्क दिये जाते हैं। कुछ विचारकों

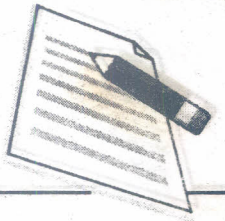

का कहना है कि धर्म का प्रचलन इसलिए रहा है कि आम लोग बहुत करके अज्ञान हैं और उनका मस्तिष्क बंधा हुआ है। एक बार जब विज्ञान मनुष्य के मस्तिष्क को परेशान करने वाले प्रश्नों का उत्तर दे देगा तब समझा जाता है कि धर्म का प्रभाव कम हो जाएगा। यह भी सोचा जाता है कि आदिम समाज में धर्म था, तब आधुनिक समाज बिना धर्म के भी चल सकता है। मार्क्सवादी विचारकों का कहना है कि जब समाज में वर्गों के बिना यानी धनवान व गरीब के अन्तर को समाप्त करके और बिना धर्म के रह सकता है तब धर्म का क्या अस्तित्व है?

आज धर्म को सार्वभौमिक मानने वाले सिद्धान्तों को अस्वीकार कर दिया गया है।

हमारे पास ऐसे तथ्यात्मक प्रमाण हैं, जो यह बताते हैं कि धर्म एक या दूसरे स्वरूप में सभी समाजों में पाया जाता है। ऐसा सभी समाजों में होता है, चाहे वह समाज आदिम हो या आधुनिक। प्रत्येक समाज में धर्म का सरोकार ऐसे लोगों के सम्बन्धों से है जो उससे ऊंचे हैं। यह ऊंचा होना मानवीय नहीं है। यह मनुष्य समाज से ऊपर है। इसी कारण जिसे ऊंचा कहते हैं वह अति प्राकृत, अलौकिक और आध्यात्मिक है। ये सत्तावादी तत्व अर्थात् अतिप्राकृत तत्व विपरीत हो जाते हैं और तत्वों एवं विचारों को लोग पूजने का पात्र बना देते हैं। धार्मिक कार्यों के लिए हम जिन अनुष्ठानों को काम में लाते हैं, वे धर्म के प्रमाणक हैं।

पाठगत प्रश्न 15.1

निम्न प्रश्नों का एक वाक्य में उत्तर दीजिए:

1. अशासी अभिजन की परिभाषा दीजिए।

.....

2. मानव समाज की बुनियादी संस्थाओं के नाम दीजिए।

.....

3. शक्ति पद से आप क्या समझते हैं?

.....

4. धर्म के कौन कौन से घटक हैं?

.....

15.2 आर्थिक संगठन के लक्षण

अब तक हमने यह सीख लिया है कि आर्थिक व्यवस्था वह है जिसमें उत्पादन, वितरण, विनिमय और वस्तुओं तथा सेवाओं का उपभोग है। इस अध्याय में हमारा सम्बन्ध आर्थिक संगठन से होगा।

सामान्यतया जब हम आर्थिक व्यवस्था के बारे में सोचते हैं तब हमारा विचार वस्तुओं, सेवाओं व धन से जुड़ी हुई संस्थाओं से होता है। एक अध्यापक महीने भर के लिए अध्यापन करता है और इसके बदले उसे निश्चित वेतन मिलता है। वह इस धन को वस्तुओं के खरीदने और अन्य सेवाओं के बदले खर्च करता हैं। संक्षेप में, जो कुछ उसे वेतन मिलता है, उसके बदले में वह भोजन खरीदता है, सिर के बाल कटवाता है, यात्रा के टिकिट लेता है और यह सब उसे अपनी आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए करना पड़ता है।

यहां हमें यह भी ध्यान में रखना चाहिए कि कुछ समाज ऐसे हैं जिनमें धन की कोई अवधारणा ही नहीं है। धन से हमारा तात्पर्य विनिमय की एक निश्चित इकाई से होता है। यह इकाई मुद्रा होती है। इस मुद्रा के माध्यम से हम किसी भी वस्तु को खरीद सकते हैं, यह वस्तु कोई पदार्थ हो सकता है या सेवा। ऐसे समाज जो आदिवासी और कृषक होते हैं जिनमें धन की अवधारणा नहीं होती, इन्हें अमुद्रित समाज कहते हैं।

15.2.1 श्रम विभाजन

चाहे समाज मुद्रित हो या नहीं सभी में ऐसे नियम होते हैं, जो बताते हैं कि लोग किस प्रकार प्राकृतिक स्त्रोतों को काम में लेंगे और उनसे वस्तुओं का उत्पादन करेंगे। लोगों के पास में स्त्रोतों को पैदा करने और उन्हें बदलने का तकनीक का ज्ञान होता है। लोग वस्तुओं के वितरण और विनिमय को जानते हैं। वे यह भी जानते हैं कि वितरण और विनिमय के कुछ नियम होते हैं। लोग अपनी योग्यता के अनुसार वस्तुओं का आवंटन करते हैं। यह आवंटन योग्यता, हुनर, पुरुष और स्त्री आदि के अनुसार होता है।

श्रम की जटिलता और विभिन्नता के आधार पर आदिवासी और कृषक समुदायों में सामान्य श्रम विभाजन होता है। इसका मतलब है कि इन समाजों में जो विशिष्टीकरण है वह थोड़ा और नाममात्र का है। बहुत बड़े परम्परागत समाजों में बीस या तीस दस्तकारी के उद्योग होते हैं और विशिष्ट प्रकार के धंधों की संख्या बहुत थोड़ी होती है, इन धन्धों में पुरोहित, सैनिक और लोक गायक होते हैं।

बहुत सामान्य समाजों में जैसे कि शिकारी और खाद्य संग्राहक जिसका लगभग कोई

विशेषीकरण नहीं होता, ऐसे समाजों में प्रत्येक व्यक्ति शिकार करने की योग्यता रखता है और प्रत्येक स्त्री खाद्य संग्रहण करती है। विशेषीकरण नहीं होने का मतलब यह नहीं है कि इन समाजों में श्रम विभाजन नहीं होता। यह कहना चाहिए कि सामान्य समाजों में लिंग और उम्र के आधार पर श्रम विभाजन तो होता ही है। जैसे कि हमने पूर्व में कहा है कि शिकारी और खाद्य-संग्राहक समाजों में शिकार करने का काम निश्चित रूप से पुरुष करते हैं जबकि खाद्य संग्रहण प्राय:, स्त्रियां करती हैं।

15.2.2 औद्योगिक अर्थव्यवस्था

समाजशास्त्री एक औद्योगिक अर्थव्यवस्था को तीन भागों में बांटते हैं:- प्राथमिक, द्वैतीयक और तृतीयक।

प्राथमिक भाग अर्थव्यवस्था में प्राकृतिक स्रोतों का संग्रहण होता है। इसमें कृषि, खनन, वन और मछुवाही सम्मिलित हैं। द्वैतीयक भाग में कच्चे माल को तैयार माल में बदलते हैं। द्वैतीयक भाग मशीनरी और तकनीकी विकास के साथ अधिक फैलने लगता है। तृतीयक भाग का ताल्लुक सेवा उद्योग से है। इसके अन्तर्गत वे धन्धे आते हैं जो दूसरे धन्धों से जुड़े होते हैं। चिकित्सकीय, अध्यापन और प्रबन्धन तथा लिपिकीय कार्य इसके उदाहरण हैं।

ऐसे समाज जहां औद्योगीकरण का विस्तार थोड़ा होता है, उनकी अधिकांश जनसंख्या प्राथमिक भाग में पायी जाती है। उदाहरण के लिए, भारत में लगभग तीन-चौथाई कार्य शक्ति कृषि उत्पादन में लगी है। जैसे-जैसे औद्योगीकरण बढ़ता है, अर्थव्यवस्था के दूसरे भाग बदल जाते हैं। जितना अधिक औद्योगीकरण होगा उतने ही अधिक सेवा उद्योगों का विकास होगा।

15.3 अर्थव्यवस्था के प्रकार

आर्थिक विकास के विभिन्न प्रकार हैं और ये प्रकार लोगों के जीविकोपार्जन पर निर्भर करते हैं। मोटे रूप में, हम आर्थिक व्यवस्था को दो भागों में बांटते हैं:- पहला वह भाग जो खाद्य संग्रहण में लगे होते हैं और दूसरा वह जो खाद्य उत्पादन में लगे होते हैं।

15.3.1 भोजन संग्रहण

भोजन संग्रहण को प्राकृतिक स्रोतों से भोजन प्राप्ति से परिभाषित किया जा सकता है। उदाहरणस्वरूप, जंगली पौधे और पशु। एक ऐसा समय था जब सारा समाज भोजन संग्राहकों से बना था। वास्तव में मनुष्य के इतिहास में भोजन संग्रहण बहुत बड़ी अवधि ले लेता है।

समय की गति के साथ में भोजन संग्रहण कम होता गया, लेकिन दुनिया के कुछ समुदायों में लोग आज भी शिकार, खाद्य संग्रहण और मछुवाही पर निर्भर हैं। खाद्य संग्रहण करने वाले मुख्य रूप से दक्षिण अफ्रीका के कलाहारी रेगिस्तान के इबुटी भाग के इटुरी जंगलों में पाये जाते हैं। इनमें आस्ट्रेलिया की विभिन्न जनजातियां अफ्रीका के कापर एक्सिमों और अंडमान टापुओं के आदिवासी सम्मिलित हैं।

15.3.2 खाद्य उत्पादन

ऐसा विश्वास किया जाता है कि लगभग 10,000 वर्ष पूर्व खाद्य उत्पादन प्रारम्भ हो गया था। यह एक क्रान्तिकारी परिवर्तन था। कई समुदायों ने लम्बे चौड़े पृथक भौगोलिक क्षेत्रों में खेती करना प्रारम्भ कर दिया और पशुओं को पालतू बनाना शुरू कर दिया और घरेलू पौधों को उगाना प्रारम्भ कर दिया। आज दुनिया के बहुत से लोग भोजन के लिए घरेलू पौधों और पशुओं को अपने जीवन का अंग समझने लगे हैं। समाजशास्त्रियों ने तीन प्रकार के खाद्य उत्पादन व्यवस्था के अन्तर को समझाया है- उद्यान कृषि, गहन कृषि और पशुचारण।

15.3.2.1 उद्यान कृषि

- उद्यान कृषि से हमारा तात्पर्य उन सभी प्रकार की फसलों से है, जिनमें अपेक्षित रूप से सामान्य तकनीकी और भौतिक संस्कृति का उपयोग होता है। उद्यान कृषि खेती-बाड़ी के स्थायी खेतों के सभी स्वरूपों से जुड़ा होती है।
- उत्पादन की इस व्यवस्था में जो तरीके प्राय: काम में लिए जाते हैं, उनमें खोदने वाली लकड़ियां, कुदाली और कुल्हाड़ी होते हैं।
- हल और ट्रैक्टर का उद्यान कृषि से कोई सम्बन्ध नहीं होता।
- उद्यान कृषि में भूमि की उर्वरकता को बढ़ाने के लिए कोई विधि काम में नहीं ली जाती और जैसा कि गहन कृषि में होता है, इस तरह से बनावटी ढंग से उद्यान कृषि की जमीन को उपयोगी नहीं बनाया जाता।

उद्यान कृषि को हम दो भागों में बांट सकते हैं। एक भाव वह है, जहां पैदा होने वाले पेड़ लम्बे होते हैं। दूसरा भाग वह होता है, जो अधिक सामान्य होता है और जिसे गहन खेती का भाग समझते हैं। इसमें जमीन को थोड़ी अवधि के लिए कृषि काम में लाया जाता है। इसके बाद इसे थोड़े समय के लिए आधा छोड़ दिया जाता है। इस अवधि में जमीन को जोता नहीं जाता और जंगली पौधे इस पर उगते हैं। जब इस तरह की पौध पर्याप्त रूप से बढ़ जाती है, तब खेतीबाड़ी घनी हो जाती है और कृषक इस भूमि पर कई प्रकार की फसलों को लेते हैं और उसके बाद किसान कुछ सालों तक इसे खाली पड़ा रहने देते हैं। तब फसलों का यह चक्र फिर दोहराया जाता है

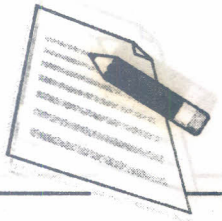

Notes

स्थानान्तरित कृषि के महत्वपूर्ण प्रकार हैं। ब्राजील के एमेजोन के कायपो, इक्वेडोर के जिवारो, दक्षिण पेसिफीक के समोअन और भारत के बेगा के माल पहारिया इसके उदाहरण हैं।

15.3.2.2 गहन कृषि

- गहन कृषि को स्थायी कृषि के नाम से भी जानते हैं।
- यह खाद्य उत्पादन की वह व्यवस्था है, जहां खेतों को नियमित रूप से जोता जाता है।
- कृषक भूमि की उर्वरता को बढ़ाने के लिए जैविकीय खाद का प्रयोग करते हैं जैसे पशु का गोबर और मनुष्य का मल।
- खेतों की सिंचाई की जाती है। मानसून की बारिश के अतिरिक्त किसान सिंचाई के लिए नदी-नालों का उपयोग भी करते हैं।
- गहन कृषि में तकनीकी एक बहुत अधिक जटिलता लिए हुए है। इसमें खुदाई की लकड़ियों तथा कुदाली की अपेक्षा हल का प्रयोग किया जाता है।
- गहन कृषि के विकास में यंत्रीकरण आ गया है, ट्रैक्टर का प्रयोग होता है और जानवरों की शक्ति के बजाय यांत्रिक शक्ति को काम में लिया जाता है।

गहन कृषि का एक परिणाम यह हुआ कि लोग बड़े-बड़े गांवों में बस गये। साथ ही औद्योगिक समुदाय के लोग पारस्परिक सम्बन्धों में बस गये हैं। उद्यान कृषि के लोग, गहन कृषि की तुलना में छोटे समूहों में रहने लगे हैं और एक जगह से दूसरी जगह पर आने-जाने लगे हैं और यह इस बात पर निर्भर है कि उनके पास खेती करने को कितनी जमीन है।

15.3.2.3 पशुचारण

- लोगों का वह समुदाय जो जानवरों को पालतू बनाता है, उसे पशुचारण कहते हैं।
- ग्राम्यता लगभग शुष्क और रेगिस्तानी क्षेत्र में रहने का प्रभावशाली तरीका है।
- पशुपालक पशुओं की नस्ल को मांस, दूध, ऊन, खाद तथा ईंधन के लिए रखता है।
- शिकारी और खाद्य संग्राहक की तरह पशुपालन आत्मनिर्भर नहीं हैं। इसका कारण यह है कि ये अपनी उपज को अपशुचारण के साथ विनिमय करते हैं। इस भांति ये पशुपालक अपने जीवित रहने की व्यवस्था पक्की कर देते हैं। दूसरे शब्दों में, पशु-पालक अपना आर्थिक विनिमय गैर-पशुपालकों के साथ करते हैं।

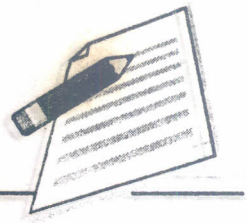

पशुपालक सामान्यतया अपने जानवरों को व्यापारियों को बेचते हैं और इस तरह ये जानवर कत्लखाने पहुंच जाते हैं। ये पशु ऊन के लिए भी बेचे जाते हैं, जिसे व्यापारी बेचते हैं। कुछ पशुपालक दूध को बेचते हैं या घी बनाकर बेचते हैं लेकिन इनमें से कई लोग इसे उपयोग के लिए भी रखते हैं। ये पशुपालक समुदाय मध्य-पूर्व, ईरान के बसारी, स्कैन्डिनिविया के लेप्स और भारत के रबारी और गद्दी हैं।

पाठगत प्रश्न 15.2

रिक्त स्थानों की पूर्ति कीजिए:

1. वे समाज, जो धन का प्रयोग नहीं करते हैं उन्हें ..... समाज कहते हैं।
2. ऐसे समाज ..... कहलाते हैं, जिनके पास कई तरह के कार्य और विशिष्टिकरण होते हैं।
3. कुदाली का सम्बन्ध ..... कृषि से है।
4. पशुचारण सामान्यतया ..... और ..... में पाया जाता है।
5. भारत में बेगा जनजाति ..... है।

15.4 सरल और जटिल समाजों की अर्थव्यवस्था : एक तुलना

खाद्य संग्रहण और खाद्य उत्पादन को उद्विकासीय परम्परा में देखा जाता है। आर्थिक व्यवस्था के उद्विकास में पहली अवस्था खाद्य संग्रहण की है। इसके बाद खाद्य उत्पादन आया। लेकिन इसका यह अर्थ नहीं है कि जब खाद्य उत्पादन प्रारम्भ हो गया तब खाद्य संग्रहण की व्यवस्था पूरी तरह से समाप्त हो गयी। वास्तविकता तो यह है कि कई वर्षों तक खाद्य संग्रहण और खाद्य उत्पादन की विभिन्न व्यवस्थाएं चलती आ रही हैं। आज यह अवस्था है कि खाद्य संग्रहण धीरे-धीरे कम हो रहा है और थोड़े समय बाद समाप्त हो जायेगा। लेकिन आज की दुनिया में अब भी हमें शिकारी अवस्था और खाद्य संग्राहक चल रहे हैं और दोनों व्यवस्थाएं साथ-साथ हैं। इस सम्बन्ध में हम आस्ट्रेलिया के आदिवासियों का उल्लेख कर सकते हैं। उनमें से कई लोग आज भी शिकारी और खाद्य संग्राहक हैं और यह सब तब हो रहा है जबकि वे लोग विकसित और औद्योगिक आस्ट्रेलिया के समाज में रह रहे हैं।

सरल समाजों में अर्थव्यवस्था की प्रकृति जीविकोपार्जन की है। इसका मतलब इन समाजों में उत्पादन उपभोग के लिए होता है। परम्परागत और सरल समाजों में परिवार एक उत्पादन और उपभोग की इकाई है। परिवार के सदस्य मिल-जुलकर अपने खेतों पर काम करते हैं और जितनी उन्हें आवश्यकता होती है उसकी पूर्ति करते हैं। इसके विपरीत जटिल समाजों में उत्पादन बाजार के लिए होता है। लोग बाजार पर इसलिए निर्भर हैं कि उनकी आवश्यकता की बहुत बड़ी पूर्ति बाजार से हो जाती है। जटिल समाजों में परिवार उपभोग की इकाई है। इसे हम उत्पादन की इकाई नहीं कहते। उत्पादन और वितरण की प्रक्रियाएं बाजार पर केन्द्रित होती हैं और उनकी प्रकृति जटिल होती है। सरल समाज जीविकोपार्जन केन्द्रित होते हैं, तथा आधुनिक समाज बाजार केन्द्रित होते हैं।

15.4.1 विनिमय की व्यवस्थाएं

मानव समाज में विनिमय के तीन प्रकार पाये जाते हैं, इनहें आदान-प्रदान, पुनर्वितरण और बाजार कहते हैं। वह विनिमय जो व्यक्तियों में होता है और समाज में जिनकी स्थिति समान होती है, उन्हें पारस्परिक विनिमय कहते हैं। इस स्थिति में जो कुछ 'ब' को देता है और 'ब' जो कुछ 'अ' को देता हैं, वह पारस्परिक विनिमय है। इस तरह का विनिमय तुरत-फुरत होता है या कुछ समय गुजर जाने के बाद होता है।

विनिमय का दूसरा सिद्धांत पुनर्वितरण हैं यहां एक व्यक्ति दूसरे व्यक्ति को जो प्रतिष्ठा में ऊंचा है, उपहार देता है और इस उपहार का बदला दूसरा व्यक्ति उपहार में देता है। इस तरह के विनिमय का दृष्टान्त जो आज के समुदाय में देखने को मिलता है, वह राजनीतिक नेता का अपने सहयोगी सदस्यों के साथ है। यह अवश्य है कि यह पुनर्वितरण किस तरह होता है। यह एक समाज से दूसरे समाज में भिन्न है। पारस्परिक विनिमय-सम्बन्ध उन लोगों में होता है, जो एक समाज में समान स्तर रखते हैं और पुनर्वितरण विनिमय-सम्बन्धों की वह व्यवस्था है जिसमें लोग समान स्तर पर नहीं होते।

15.4.2 बाजार

विनिमय का तीसरा सिद्धांत बाजार है। बाजार के दो पहलू हैं। पहला, बाजार का तात्पर्य एक भौतिक स्थान है, जहां लोग अपना विनिमय करने के लिए एकत्रित होते हैं। इस स्थान पर लोग वस्तुओं को खरीदने व बेचने के लिए एकत्र होते हैं। इसे हम बाजार का स्थान कह सकते हैं। दूसरा, मांग और पूर्ति की शक्तियों, वस्तुओं का मूल्य तथा सेवाएं बाजार में उपलब्ध करवाती है। यह सिद्धांत 'बाजार सिद्धान्त' के नाम से जाना जाता है।

15.4.3 सरल व जटिल समाजों में बाजार

बाजार की स्थिति पर सरल समाजों को दो श्रेणियों में बांटा जाता है, पहली श्रेणी तो वह जहां बाजार की जगह की कोई अवधारणा नहीं होती। इनको हम बिना बाजार के समाज कह सकते हैं। शिकारी और खाद्य संग्राहक लोग इस श्रेणी में आते हैं। द्वितीय, वे सामान्य समाज जिनके बाजार की जगह होती है जहां लोग वस्तुओं और सेवाओं के आदान-प्रदान के लिए एकत्र होते हैं। लेकिन उनका कोई भी बाजार का सिद्धान्त नहीं होता। जटिल समाजों की आर्थिक वयवस्था में बाजार का सिद्धान्त देखने को मिलता है। इसलिए जब समाजशास्त्री आदिवासी तथा कृषक समुदायों की चर्चा करते हैं, तब वास्तव में वे बाजार के स्थान की चर्चा करते हैं न कि बाजार के सिद्धान्त की।

जटिल समाज पूर्ण रूप से जो वे चाहते हैं, उसे पाने के लिए बाजार पर निर्भर रहते हैं। अगर बाजार का अन्त हो जाता है तब बाजार का अवसान हो जायेगा। यह इसलिए कि जैसा कि पहले कहा है - उत्पादन और वितरण की शक्तियाँ बाजार में आ जाती हैं। जटिल समाजों में परिवार उत्पादन की इकाई नहीं होता इसलिए ये अपनी सभी आवश्यकताओं और इच्छाओं की पूर्ति के लिए बाजार पर निर्भर होते हैं।

सरल समाजों में जहां बाजार का स्थान होता है, लोग अपनी जीविकोपार्जन के लिए बाजार पर निर्भर नहीं होते। वे उन सब वस्तुओं को स्वयं पैदा करते हैं जो उनकी जीविकोपार्जन के लिए आवश्यक होती हैं। यदि वे कुछ चीजें पैदा नहीं करते तब वे उनकी प्राप्ति जीविकोपार्जन हेतु पुनर्वितरण द्वारा प्राप्त कर लेते हैं।

इससे और आगे, सरल समाजों में बाजार विशुद्ध रूप से आर्थिक संस्था नहीं हैं। पहला तो यह कि ये अपने समाज के नियमित लक्षण नहीं हैं। इनकी उत्पत्ति कर्मकाण्ड और त्यौहार से होती है। बाजार का अस्तित्व एक सप्ताह या एक पखवाड़े में होता है। बाजार में आने वाले लोग खरीदने वाले और बेचने वाले हैं, जो इस तरह से जटिल समाजों के बाजार को बनाते हैं। इन बाजारों में लोग अपने नातेदारों और मित्रों से मिलने का अवसर देते हैं। सरल समाजों में इस तरह के बाजार एक मेले की तरह होते हैं। इसका कारण यह है कि बाजार का यह दिन लोगों की भीड़ को एकत्र करता है। महत्वपूर्ण राजनीतिक घोषणाएं भी इन्हीं बाजारों में होती हैं। कुछ समाजों में बाजार का दिन अदालत का दिन होता है। बाजार के दिन विवाह के मसले भी तय हो जाते हैं। इस तरह से बाजार में आर्थिक प्रकार्य बजाय सरल समाजों के बहुत अधिक सामाजिक कार्य करता है। जटिल समाजों में अनिवार्य रूप से बाजार आर्थिक संस्था का काम करता है।

16.4.4 वस्तु विनिमय

सरल समाजों में वस्तु विनिमय व्यवस्था पायी जाती है। यह वह प्रकार है जहां मुद्रा की अनुपस्थिति में विनिमय होता है तथा वस्तु के बदले वस्तु प्राप्त की जाती है। सम्बन्धित समाज यह तय करता है कि किसी वस्तु का विनिमय किस वस्तु के साथ किया जाए। विनिमय का कोई समान मापदण्ड नहीं पाया जाता। समाजशास्त्रियों की भाषा में कोई सामान्य उद्देश्य धन नहीं होता। यह धन, वह होता है जो हर किसी वस्तु के विनिमय के लिए काम में लिया जाता है, जो सरल समयों में होता है उसे निश्चित उद्देश्य धन कहते हैं। इसका मतलब यह है कि निश्चित वस्तुओं को खरीदने के लिए कुछ अन्य निश्चित वस्तुओं को प्राप्त करते हैं। जैसे वधू की प्राप्ति के लिए वधू मूल्य के रूप में पशुधन दिया जाता है। लेकिन पशुधन को हम भोजन व कपड़े प्राप्त करने के लिए नहीं देते। दूसरे शब्दों में, सरल समाजों में सौदेबाजी के अलग-अलग क्षेत्र होते हैं और वस्तुएं जो एक क्षेत्र में काम में ली जाती हैं वे वस्तुएं क्षेत्र में काम में नहीं आती हैं।

यह सब बताता है कि सरल समाज तकनीकी दृष्टि से भी सरल होते हैं, उनका मुद्रीकरण नहीं होता। वे वस्तुविनिमय करते हैं और इन समाजों में बाजार बहुउद्देश्य इकाइयां होते हैं। जटिल समाज तकनीकी ढंग से अधिक कृत्रिम होते हैं जहां मुद्रा का अधिक प्रचलन होता है और ये समाज पूर्ण रूप से बाजार पर निर्भर होता है और इन समाजों में आर्थिक मूल्य सामाजिक मूल्यों से बढ़कर होते हैं।

15.5 आर्थिक विकास

अर्थव्यवस्था में प्रगतिशील परिवर्तन आर्थिक विकास कहलाता है। विकास का मतलब केवल सकारात्मक परिवर्तन हो नहीं है जैसा कि इसके नाम से प्रतीत होता है। ये वे परिवर्तन हैं जो बाहर से लागू किये जाते हैं। दूसरे शब्दों में, बाह्य ऐजेन्सियां होती हैं जो एक समाज में विकास की योजना लाती है।

20 वीं शताब्दी के मध्य में विकास का विचार लोकप्रिय हुआ। सामाजिक मानवशास्त्री और समाजशास्त्री इस बात से चिन्तित थे कि आदिवासी और कृषक समाज कमजोर हो रहे थे। उनकी बिगड़ती हुई दशा का कारण बाहरी दुनिया के साथ सम्पर्क था और जिसने इन समाजों को खराब स्थिति में डाल दिया। इस बाहर की दुनिया ने इन समाजों का शोषण किया और उनके स्रोतों को त्रासदी की स्थिति पर ला दिया। ऐसा सोचा गया कि अगर इन लोगों का भला नहीं सोचा गया तो वे समाप्त हो जायेंगे। इसी वैचारिकी ने विकास की प्रक्रिया को मार्ग दिया।

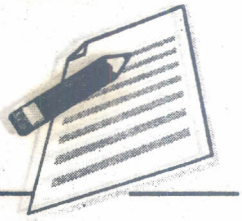

आर्थिक विकास के बुनियादी लक्ष्य हैं- इस बात का प्रयत्न किया जाना चाहिए कि भूख और अभाव को कम कर देना चाहिए या घटा देना चाहिए। यह कोशिश करनी चाहिए कि लोगों को आत्मनिर्भर बनाया जाए और यह देखा जाना चाहिए कि वे बाहर की सहायता के बिना अपने बुनियादी लक्ष्यों को पूरा कर सकें। इन दोनों लक्ष्यों को पूरा करने के लिए वह समाज जिनको ऐसा बनाना है, उन्हें भागीदारी करनी चाहिए। वे लोग जो विकास की प्रक्रिया से जुड़े हैं, उन्हें लोगों से यह जानना चाहिए कि उनकी आवश्यकताएं क्या हैं और आवश्यकताओं की वरीयता क्या है? अगर हम आवश्यकताओं को नहीं जानते तो यह संभव है कि हमारे विकास के कार्यक्रम अस्वीकृत हो जाएंगे।

पाठगत प्रश्न 15.3

निम्न कथन के आगे सही व गलत लिखिए:

1. खाद्य संग्रहण खाद्य उत्पादन से पहले आया है।
2. जटिल समाजों में परिवार उत्पादन की इकाई है।
3. पारस्परिकता उन दो व्यक्तियों के बीच में हैं, जो अपने समाज में समान प्रस्थिति में है।
4. बाजार सभी जगह पाये जाते हैं।
5. मुद्रा के अभाव में वस्तु विनिमय होता है।
6. सरल समाजों में बाजार आर्थिक सत्ता रखते हैं।
7. विकास का मतलब आर्थिक विकास है।
8. विकास कार्यक्रमों में समुदायों की भागीदारी नहीं होनी चाहिए।

15.6 राजनीतिक व्यवस्था

राजनीतिक व्यवस्था समाज की वह व्यवस्था है जो लोगों की भूमिका को परिभाषित करती है। यह भूमिका कानून और व्यवस्था को बनाये रखने के लिए होती है और दूसरी ओर समाज के प्रकार्यों को नियंत्रित करती है। राजनीतिक व्यवस्था का एक प्रकार्य यह होता है कि वह कानूनी व्यवस्था को बनाये रखता है और सरल समाजों में यह इसका बहुत बड़ा प्रकार्य होता है। जटिल समाजों में इसका दूसरा प्रकार्य सामाजिक और आर्थिक विकास के स्रोतों का वितरण करना होता है।

Notes

राजनीतिक व्यवस्था का एक महत्वपूर्ण अंग राज्य है। यहां हमें यह ध्यान में रखना चाहिए कि कुछ समाजों में राज्य जैसी कोई संस्था नहीं होती। शिकार और खाद्य संग्राहक समाजों में पशुचारण और कृषक समाजों में राजा नहीं होता और सत्ता का कोई केन्द्र नहीं होता। ऐसे समाजों में कोई केन्द्रित प्राधिकार नहीं होता और ऐसा भी नहीं होता कि इन समाजों में कोई सरकार हो या कानूनी व्यवस्था हों। यह भी नहीं होता कि श्रम विभाजन के नाम पर इन समाजों में न वर्ग होते हैं और न गरीब और धनी लोग। ऐसा नहीं होता कि कुछ लोगों को विशेषाधिकार हों और कुछ को नहीं। ये समाज उन समाजों से भिन्न होते हैं, जिनके पास कोई केन्द्रित प्राधिकार हो, सरकार हो, कानून व्यवस्था व वर्ग हो। राज्यहीन समाजों में जो आदिवासी पाये जाते हैं वे हैं- आस्ट्रेलिया के मूल निवासी, याको और ईबो नाइजीरिया के, पूर्वी अफ्रीका के मसाई और नान्दी, सूडान के न्यूऐर और सरल समाजों में अफ्रीका के झूलु।

राजनीतिक राज्य की अनुपस्थिति का यह मतलब नहीं है कि इन समाजों का व्यवस्थित अस्तित्व नहीं है। निश्चित रूप से ये समाज अराजकता से भरे हुए हैं। इन समाजों में ऐसी संस्थाएं होती हैं, जो समाजों को व्यवस्थित रूप से रखती हैं। उदाहरण के लिए, व्यक्तियों के बीच में जो तनाव व झगड़े होते हैं उन्हें सुलझा दिया जाता है या ऐसे समाजों में कुछ लोग ऐसे होते हैं जो झगड़े की स्थिति को हल कर देते हैं। न्यूएर जनजाति में एक धार्मिक मुखिया होता है, जिसे हम चीते की चमड़ी वाले मुखिया कहते हैं। इन्हें चीते की चमड़ी वाला इसलिए कहते हैं कि वह उस तरह के मानव हत्या के मसलों में हस्तक्षेप करते हैं। इनका फैसला उन मामलों में लागू होता है जो झगड़ते हैं और व्यवहार के नियमों का उल्लंघन करते हैं। ये समाज किसी भी झगड़े में अपना दखल रखते हैं। इसका तात्पर्य यह हुआ कि राज्य के न होने पर भी समाज में जो भी संघर्ष होते हैं, उन्हें हल करने के लिए कोई न कोई अनौपचारिक संस्था अवश्य होती है।

15.7 शक्ति और प्राधिकार

शक्ति प्राधिकार से भिन्न है। इन दोनों का अन्तर वैधता का है। वैधता का मतलब हुआ वह शक्ति जिसे समाज स्वीकृति देता है। समाजशास्त्रियों द्वारा वैधता का अर्थ, 'न्याय सम्मतता' से है। क्या समाज के सदस्य को यह अधिकार है कि वह अमुक स्थिति में अपनी शक्ति का प्रयोग कर सकता है या नहीं। शक्ति का प्रयोग लुटेरा और पुलिस दोनों ही करते हैं। लेकिन ताकत का प्रयोग वही करता है, जो वैध होता है। राज्य की परिभाषा इस तरह की जाती है कि वह जिस शक्ति का प्रयोग करता है वह वैध है। इस भांति राज्य अपने क्षेत्र में जिस वैध शक्ति का प्रयोग करता है, उसे प्राधिकार कहते

हैं। ऐसी स्थिति में शक्ति का मतलब प्राधिकार से नहीं होता। वास्तव में प्राधिकार वह है, जो वैध शक्ति को काम में लेता है। कहना यह चाहिए कि वैध प्राधिकार में जोर वैधता पर होता है। इसे परिभाषित करने में कहना चाहिए कि जो वैध शक्ति है, वह प्राधिकार है।

15.8 प्राधिकार के प्रकार

हम प्राधिकार को तीन प्रकारों में देख सकते हैं 1. परम्परागत प्राधिकार 2. करिश्मायुक्त प्राधिकार और 3. वैधानिक प्राधिकार। परम्परागत समाजों में जो प्राधिकार होता है, उसे परम्परागत प्राधिकार कहते हैं। सरल समाजों में जो प्राधिकार होता है, उसे परम्परागत प्राधिकार कहते हैं। जटिल समाजों के प्राधिकार को वैधानिक प्राधिकार कहते हैं। यह भी संभव है कि विभिन्न प्राधिकार किसी भी समाज में एक साथ मिल सकते हैं। एक ही समाज में वंशानुक्रम द्वारा स्थापित राजा होता है, उसे परम्परागत प्राधिकार कहते हैं और उसी समाज में चुना हुआ मुख्यमंत्री भी होता है जो वैधानिक युक्त प्राधिकार है।

तीन प्रकार के प्राधिकार वैधता के आधार पर एक दूसरे से पृथक किये जाते हैं। जब वैधता परम्परा और रीतिरिवाज से ली जाती है, तब इसे परम्परागत प्राधिकार कहते हैं। जब यह कहा जाता है कि पिता के मरने के बाद पुत्र राज्य का मुखिया हो जाता है तब यह परम्परागत प्राधिकार है। युक्तायुक्त विधि प्राधिकार में तब इसमें कानून औपचारिक रूप से निर्देशक होते हैं और इस स्थिति में प्राधिकार सब पर एक जैसा लागू होता है। इसमें व्यक्तियों को प्राधिकार प्राप्त करने के लिए प्रतियोगिता करनी पड़ती है। यह प्रतियोगिता नियम और कानून पर लागू होती है। अवैयक्तिक कानून की इस व्यवस्था में गुण ओर योग्यता महत्वपूर्ण सिद्धान्त होते हैं। परम्परागत प्राधिकार व्यवस्था जैसी है, उसे बनाये रखते हैं। दूसरी ओर विधि-युक्तायुक्त प्राधिकार की प्रकृति ऐसी है, जिसमें परिवर्तन आता है। यह इस बात को भी बताता है कि सरल समाज सापेक्षिक रूप से रुढ़िगत और परम्परा केन्द्रित होते हैं जबकि जटिल समाज प्रगतिशील और परिवर्तन केन्द्रीत होते हैं।

तीसरे, प्रकार के प्राधिकार को करिश्मा का प्राधिकार कहते हैं। यह प्राधिकार तब उभर कर सामने आता है जब प्रचलित व्यवस्था में संकट पैदा हो जाता है। जब समाज में ऐसा संकट आता है तब लोग ऐसे व्यक्ति का हस्तक्षेप चाहते हैं जो उनके लिए संघर्ष को समाप्त कर दें। ऐसा व्यक्ति करिश्माई होता है, उसे विशिष्ठ व्यक्ति समझते हैं। इस व्यक्ति में वह जादू होता है जो दूसरों में नहीं होता। यह करिश्मे का व्यक्ति प्राकृतिक,

सामाजिक या राजनीतिक होता है। इस व्यक्ति में करिश्मा करने की क्षमता होती है। जब करिश्मे वाला व्यक्ति शक्ति प्राप्त कर लेता है तब उसके इस प्राधिकार को करिश्माई कहते हैं। चीन के चेयरमेन माओ ची डांग करिश्मे के प्राधिकार का अच्छा दृष्टान्त है। करिश्मे के व्यक्ति के लिए यह जरूरी नहीं है कि उसके पास कोई शक्ति हो। वह शक्ति की पहुंच के बाहर भी रहता है। इसका बहुत अच्छा दृष्टान्त यह है कि महात्मा गांधी जी के पास कोई प्राधिकार नहीं था और इसलिए हमें करिश्माई नेता और करिश्माई प्राधिकार में अन्तर करना चाहिए। यह इसलिएं कि करिश्माई नेता संघर्ष को सुलझा तो देता है लेकिन फिर भी वह प्राधिकार नहीं रखता।

पाठगत प्रश्न 15.4

निम्नलिखित युग्मों को जोड़िए:

'अ'	'ब'
(अ) राजनीतिक व्यवस्था	(i) इस व्यवस्था में सरकार या कानूनी व्यवस्था नहीं होती।
(ब) राज्यहीन समाज	(ii) कानून और व्यवस्था को बनाए रखते हैं, और समाज के प्रकार्यों की देख-रेख करता है।
(स) करिश्मा	(iii) लोग असाधारण लक्षणों को देखते हैं जो सामान्य नहीं होते।

15.9 धर्म की परिभाषा

पहले हमने कहा है कि दुनिया में कोई भी ऐसा समाज नहीं है, जिसमें किसी न किसी रूप में धर्म नहीं होता। यह सतत प्रयत्न रहा है कि विभिन्न समय और समाजों में राजनीतिक नेताओं ने ऐसे समाज को बनाने की कोशिश की है जहां धर्म न हो। लेकिन ये सब प्रयास असफल रहे हैं और दुनिया के सभी समाजों में धर्म ने अपनी निरन्तरता बनाये रखी है। धर्म केवल सार्वभौमिक ही नहीं है लेकिन इसने आधुनिक समाज को एक ताकतवर शक्ति के रूप में स्वीकार किया है।

धर्म एक या अधिक आध्यात्मिक शक्ति में विश्वास है। यह विश्वास और कर्मकाण्ड समान रूप से महत्वपूर्ण हैं। 19 वीं शताब्दी के अंतिम भाग में लोगों का मानना था

Notes

कि धर्म और कुछ न होकर विश्वास और व्यवहार का एक पुलिन्दा है। विश्वास और व्यवहार में क्या होता है, यह एक विवादित मुद्दा है।

धर्म की अत्यधिक प्रभावशाली व्याख्या यह है कि इसमें विश्वास और व्यवहार, वस्तुओं और विचारों से जुड़े होते हैं जिसे लोग पवित्र कहते हैं। पवित्र वस्तुएं वे हैं, जो सामान्य और वर्जित वस्तुओं से भिन्न होती हैं। इस संदर्श को सुप्रसिद्ध समाजशास्त्री इमाइल दुर्खीम ने रखा था।

पवित्र की विचारधारा सार्वभौमिक होती है। कुछ धर्म जैसे कि बौद्ध धर्म, कनफ्यूशियस धर्म और जैन धर्म ऐसे हैं, जिनमें ईश्वर या परमात्मा की अवधारणा नहीं है। यह होते हुए भी इन धर्मों में पवित्र वस्तु की अवधारणा अवश्य है। बौद्ध धर्म, उदाहरण के लिए चार महान् सत्य की चर्चा करता है। ये चार महान् सत्य हैं: 1. दुनिया दुख से भरी हुई है, 2. दुख का कारण मनुष्य की इच्छाएं हैं, 3. हमें अपने आपको इच्छाओं की अवस्था से मुक्त रखना चाहिए, और 4. मनुष्य को एक ईमानदार व्यक्ति की तरह मोक्ष प्राप्त करने का प्रयास करना चाहिए। बौद्ध धर्म के ये महान् सत्य पवित्रता के प्रतिमान हैं।

15.10 धर्म के प्रकार

हमने प्रारम्भ में देखा है कि धर्म सार्वभौमिक रूप से पाया जाता है। इसके विश्वास और कर्मकाण्ड एक समाज से दूसरे समाज में भिन्न-भिन्न होते हैं। सरल समाजों में, शामन एक महत्वपूर्ण अतिप्राकृत शक्ति होता है। शामन शब्द की उत्पत्ति उत्तर अमेरिकन भारतीयों में हुई है। उसमें अतिप्राकृत शक्ति आ जाती है। इस समावेश या आवेश की स्थिति में यह व्यक्ति सम्पूर्ण समाज में भविष्य में होने वाली घटनाओं की भविष्यवाणी करता है। ये घटनाएं वर्षा का होना, फसल की तादाद, प्राकृतिक त्रासदी जैसे कि सूखा, संक्रामक रोग, बाढ़ आदि का होना। यह व्यक्ति व्यक्तिगत प्रश्नों का उत्तर भी देता है। ये व्यक्तिगत प्रश्न बीमारी, बांझपन आदि हो सकते हैं। इन व्यक्तिगत प्रश्नों के लिए क्या निदान हो सकते हैं, इसे भी बताता है।

सरल समाजों में धर्म के दो स्वरूप पाये जाते हैं – 1. आत्मवाद और 2. टोटमवाद।

- आत्मवाद आत्मा के अस्तित्व में विश्वास द्वारा परिभाषित किया जाता है।
- मुनष्य की आत्मा अत्यधिक आघातवर्ध्य प्लास्टिक है, और यह शरीर के किसी भी भाग में अपना छिद्र बना सकती है।

- लोगों का विश्वास है कि उनके पूर्वजों की आत्माएं और जानवर इस संसार में निवास करते हैं।
- ये आत्माएं लाभदायक हैं या हानिकारक और मनुष्य के अस्तित्व को कई प्रकार से प्रभावित करती हैं।
- टोटम का उद्गम उत्तरी अमेरिका के आदिवासियों से हुआ है।
- टोटमवाद का विश्वास है कि एक समय ऐसा था जब पौधों, जानवरों और अन्य बेजान वस्तुओं ने गोत्र को संस्थापित किया था।
- इस कारण लोगों का इन पौधों या जानवरों के साथ विशेष कर्मकाण्डी सम्बन्ध है।
- लोगों का विश्वास है कि यदि वे अपने टोटम की पूजा करते हैं तब उनकी इच्छाओं की पूर्ति हो जाती है।

उपरोक्त तथ्यों के अतिरिक्त कुछ सरल समाज इस बात में विश्वास करते हैं कि कुछ अवैयक्तिक शक्तियां होती हैं जिनके अपने कानून होते हैं और जो मनुष्य के भाग्य को विभिन्न प्रकार से प्रभावित करती हैं। पोलिनेशिया वासी इन शक्तियों को माना कहते हैं। अन्य समाजों में इन शक्तियों को विभिन्न नाम से जाना जाता है। उदाहरण के लिए, झारखण्ड की हो जनजाति इसे बोंगा कहती है। कुछ साधारण समाजों में धार्मिक विश्वास बहुत अधिक जटिल होते हैं लेकिन इन जनजातियों का एक ईश्वर में विश्वास नहीं होता। इसका मतलब हुआ ये लोग एकेश्वरवादी नहीं है। सरल समाज बहुत करके बहु ईश्वरवादी होते हैं इसका मतलब हुआ ये समाज बहुदेववादी हैं।

विभिन्न समाजों में जो धर्म पाये जाते हैं, वे सब एकेश्वरवादी हैं। यहूदीवाद, ईसाई, इस्लाम और सिख धर्म एकेश्वरवादी हैं। इन धर्मों का उद्गम पूर्वी एशिया में हुआ है और प्रत्येक धर्म ने दूसरे धर्मों को प्रभावित किया है। इन तीन धर्मों में यहूदी धर्म ईसा पूर्व 1000 वर्ष पहले हुआ है। ईसाई धर्म यहूदी धर्म का एक अंग मात्र था और यह सब इसके एक निश्चित धर्म के कारण था। आज ईसाई धर्म के अनुयायी बहुत बड़ी संख्या में हैं और इनका फैलाव बहुत अधिक है। ईसाई समुदाय आज विश्व के प्रत्येक भाग में हैं। ईसाई धर्म के बाद विश्व का बहुत बड़ा धर्म इस्लाम है तथा इनकी केन्द्रिय बसावट उत्तर और पूर्वी अफ्रीका मध्य पूर्व, दक्षिण-पूर्व एशिया और भारतीय उपमहाद्वीप में हैं।

सिख धर्म का उद्गम भी भारत में है। यह धर्म पुरोहित वर्ग के अंधविश्वास के कारण हुआ है। हिन्दू धर्म सबसे पुराना धर्म है। इसके मुख्य विश्वास आज से कोई 6000 वर्ष पूर्व के हैं। यह धर्म एकेश्वरवाद और बहुदेववाद को मानता है। इस बात पर विश्वास

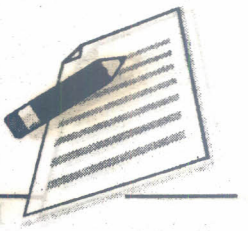

करके कि ईश्वर एक है और उसमें एकता है। यह भी माना जाता है कि हिन्दुओं में ईश्वर की विभिन्नता है और इस विभिन्नता को कई स्वरूपों में देखा जा सकता है। ये स्वरूप पशु, पौधे, मनुष्य और बेजान तथा मिथिकीय वस्तुओं में पाये जाते हैं।

दक्षिण के धर्मों को नैतिक धर्म जैसे कि बौद्ध धर्म, कन्फ्यूशियस धर्म, टोऐजम कहते हैं। प्रत्येक धर्म में एकाधिक ईश्वर के लिए कोई अवधारणा नहीं है। ये धर्म नैतिक सिद्धान्तों पर जोर देते हैं। ऐसे धर्म जिनका भारत की भूमि से उद्गम हुआ है और जो मुख्य रूप से भारत में विकसित हुए हैं, वे हैं जैन और सिख धर्म।

15.11 धार्मिक संगठनों के प्रकार

प्रत्येक धर्म के अनुयायियों का एक समुदाय होता है जिसकी भागीदारी विभिन्न धार्मिक संगठनों से होती है। ऐसे संगठन चर्च या पंथ हैं। इन समुदायों के लिए चर्च एक बहुत बड़ा सुस्थापित धार्मिक संगठन है। संगठन का तात्पर्य, किसी भी धर्म से है और अनिवार्य रूप से ईसाई संगठन के लिए ही हो, ऐसा नहीं है।

सामान्यतया चर्च एक औपचारिक नौकरशाही संरचना है। इसमें अधिकारियों का एक सोपान होता है। इन अधिकारियों के सोपान में वैचारिकी और प्रकार्य होते हैं। यह संरचना अपने आपको सामाजिक मूल्यों और जिस समाज में वह होता है उसे अपना लेती है। अक्सर यह संगठन प्रचलित सामाजिक व्यवस्था को सही बताता है। ऐसा इसलिए होता है कि यह संस्था धर्म के रूढ़िवादी तथ्य को मानती है।

समाज जब चर्च के नियम उपनियम को स्वीकार करता है, तब कई बार इसके विरुद्ध विरोध भी पैदा होता है। यह खिलाफत करने वाले कहते हैं कि चर्च ने अपने सामाजिक मूल्यों को अपना रखा है, जिनकी निन्दा होनी चाहिए। वे यह भी कहते हैं कि चर्च ने अपने सही रास्ते को खो दिया है। यह भी आलोचना की जाती है कि चर्च अपने आंदोलन को आगे नहीं बढ़ाता और कुछ लोग ऐसे हैं जो चर्च को एक सुदृढ़ समूह की तरह संगठित नहीं करते।

इस तरह का समूह जो चर्च का विरोध करता है और नई विचारधारा को देता है उसे पंथ कहते हैं। चर्च को जो प्रतिबद्ध रूप से मानने वाले हैं, उनका स्वरुप छोटा होता है। यह छोटा समूह अपने इर्द-गिर्द के समूहों को प्रभावित करता है। भारत में आर्य समाज, हिन्दू धर्म के एक पंथ का अच्छा उदाहरण है। इसी तरह हमारे यहां ईसाई धर्म के संदर्भ में काल्विनिस्ट और मेथोडिस्ट दो पंथ है। ये भी इस बात को बताते हैं कि इनको मानने वाले समूह छोटे आकार के हैं।

एक समय ऐसा भी आता है जबकि एक पंथ अपनी सक्रिय विरोधी विचारधारा छोड़ देता है। वह उस समाज को अपना लेता है जिसमें ये तत्व पाये जाते हैं। इसका कारण यह है कि विरोध करने वाले पंथ को अपने अस्तित्व को बनाये रखने के लिए प्रयास करना पड़ता है और ऐसा भी हो जाता है कि इस नये पंथ की सदस्यता घटने लगती है। वास्तव में एक पंथ चर्च का अंग बन जाता है जिसको वह छोड़कर आया था। एक पंथ जब विरोध करने में ठंडा पड़ जाता है तब वह धीरे-धीरे विरोध को छोड़ देता है।

एक दूसरे प्रकार का धार्मिक संगठन भी है जिसे सम्प्रदाय कहते हैं। कुछ अर्थों में पंथ सम्प्रदाय की तरह हो जाता है। इसका कारण यह है कि पंथ और सम्प्रदाय दोनों ही व्यक्तियों के नेतृत्व के कारण बनते हैं लेकिन पंथ और सम्प्रदाय दोनों ही बाहर के समाज के मूल्यों को छोड़ देते हैं। लेकिन पंथ की तुलना में सम्प्रदाय की संगठन की पकड़ कमजोर होती है। पंथ व्यक्ति के अनुभव पर ज्यादा निर्भर रहता है। यह भी संभावना है कि पंथ की सदस्य लिए बिना भी कोई व्यक्ति इसका सदस्य बन सकता है। एक बात यह है कि पंथ का संस्थापक जब मर जाता है तब पंथ की निरन्तरता खतरे में पड़ सकती है। पंथ का बहुत अच्छा दृष्टान्त ओशो के पंथ में विश्वास करने वाले लोग हैं।

15.12 धर्म की उत्पत्ति एवं प्रकार्य

19वीं शताब्दी में धर्म की उत्पत्ति के कुछ सिद्धान्त सामने आये। उस समय ये सिद्धान्त बहुत लोकप्रिय थे लेकिन आज ये सिद्धान्त फिजूल हो गये हैं। आज समाजशास्त्री धर्म की उत्पत्ति के बारे में कोई बड़ी चर्चा नहीं करते। उनके सोचने का नजरिया बदल गया है। अब समाजशास्त्री धर्म के प्रकार्यों की चर्चा करते हैं और यह बताते हैं कि आधुनिक समय में किस प्रकार धर्म बदल गया है।

उद्विकासवादी दो मुद्दों पर जो एक दूसरे से जुड़े हुए हैं चर्चा करते हैं। वे पहला तो यह देखते हैं कि प्रारम्भ में धर्म का क्या प्रकार था और दूसरा यह कि किस भांति धर्म अस्तित्व में आया ओर समय की किन अवस्थाओं में यह आगे पहुंचा। धर्म के उद्विकास के सिद्धान्तों में यह समझा गया कि धर्म का उद्गम सपनों और मृत्यु के उद्गम से हुआ है। वह कहता है कि व्यक्ति किस तरह के सपने देखता है और मौत के बाद शरीर का क्या होता है? इसका मतलब यह हुआ कि मरने के बाद शरीर से कौन सी चीज चली जाती है। इस विचार ने आदिम आदमी को बड़ी परेशानी में डाला होगा। इस प्रश्न के उत्तर में उसके दिमाग में आत्मा का विचार आया होगा। समाजशास्त्रियों ने इसे एनीमा के पद से स्पष्ट किया होगा। उनका कहना था कि

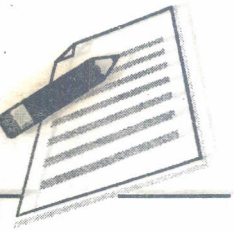

आदिम आदमी ने अपने सपनों में एनीमा को देखा होगा और मृत्यु के बाद यह एनीमा अर्थात आत्मा शरीर को छोड़कर चली जाती है। इस विचार को उन्होंने आत्मावाद के नाम से जाना। एनीमा का मतलब हुआ, आत्मावाद का अस्तित्व।

अन्य विद्वान यह सोचते थे कि आदिम आदमी इतना बुद्धिमान नहीं था कि वह आत्मा के विचार को समझ सके। शायद आत्मावाद के विचार की बात बाद में आयी होगी। उन्होंने सोचा कि धर्म की उत्पत्ति सामान्य विचारों से होती है। जिन लोगों ने टोटमवाद को धर्म का प्रारम्भिक विचार माना उसका कारण शायद पौधों और पशु की पूजा थी। उनका विचार था कि ये पौधे और पशु उनकी मृत आत्माओं को ठहरने का स्थान देते थे। ये पौधे और पशु ही उनके पूर्वज थे और इसलिए वे उपासना के लायक थे।

19वीं शताब्दी में धर्म की उत्पत्ति का एक लोकप्रिय सिद्धान्त भी था। यह सिद्धान्त था – प्राकृतिक वस्तुओं की उपासना करना। इन प्राकृतिक वस्तुओं में सूर्य, चन्द्र, तारे, इन्द्रधनुष आदि थे। यह इसलिए कि ये प्राकृतिक वस्तुएं भय और आश्चर्य पैदा करती थीं, इस सिद्धान्त को प्रकृतिवाद कहते हैं।

धर्म की उत्पत्ति के ये सब सिद्धान्त केवल अनुमान थे। इन्हें अस्वीकर करने का बहुत बड़ा कारण यही था। 20वीं शताब्दी के प्रारम्भ में उत्पत्ति का विवाद हट कर यह हो गया कि धर्म समाज के लिए कौन से प्रकार्य करता है। धर्म प्रकार्यात्मक है, क्योंकि यह लोगों को एक नैतिक समाज में बांधता है। यह समाज का एकीकरण करता है। धर्म अपनत्व और सुदृढ़ता की भावना को पैदा करता है। बाद के समाजशास्त्रियों ने यह संकेत भी दिया कि धर्म सामाजिक नियंत्रण का महत्वपूर्ण अंग है। यह समाज का एक खाका बनाता है जैसे कि जाति व्यवस्था। जाति व्यवस्था का आधार हिन्दू धर्म है।

यद्यपि यह सिद्धांत आज भी आदर की दृष्टि से देखा जाता है। समाजशास्त्रियों का कहना है कि इस सिद्धान्त को उन समाजों पर लागू किया जाता है, जिनमें एक ही धर्म होता है। यहां यह संभव है कि धर्म सामाजिक एकता को लाता है। लेकिन ऐसे समाज जहां दो या दो से अधिक प्रकार के धर्म होते हैं, उनमें एकता नहीं होती। इन समाजों में धर्म विभिन्न धर्मावलम्बियों के बीच में संघर्ष पैदा कर सकता है। इस तरह से देखा जाय तो धर्म समाज में दुष्कार्य भी कर सकता है।

15.13 धर्म में परिवर्तन

इस अध्याय में हम इस बात की खोज करेंगे कि अर्वाचीन समाज में धर्म का परिवर्तित स्वरूप क्या है? इस पाठ में हमने निरन्तर यह कहा है कि आज धर्म ओझल नहीं हुआ

है, जैसा कि कुछ विचारकों ने पहले सोचा था। धर्म ओझल नहीं हुआ अपितु उसका स्वरूप बदल गया है।

- आज हुआ यह है कि जीवन की प्रत्येक अवस्था में—जन्म, विवाह और मृत्यु पर किया जाने वाला कर्मकाण्ड बदल गया है।
- मनुष्य के सामाजिक जीवन पर धर्म की जो पकड़ थी, वह कमजोर हो गयी है। इस प्रक्रिया को धर्मनिरपेक्ष कहते हैं। यह धर्म निरपेक्षता की प्रक्रिया सारे विश्व में देखने को मिलती है।
- धर्म ने उसके बहुत सारे सामूहिक प्रकार्य छोड़ दिये हैं। इसलिए यह कहना कि धर्म सामाजिक एकीकरण करता है, सही नहीं है।
- आज अधिकांश समाज धार्मिक बहुलता के क्षेत्र में हैं। इसका आशय हुआ कि एक ही समाज में विभिन्न धर्म हैं। आज धर्म और जैसे कि पहले भी एक बहुत बड़ा प्रकार्य व्यक्ति के लिए यह कर रहा है कि वह विश्व की सभी वस्तुओं के बारे में अपना विश्लेषण देता है। बहुत से प्रश्न जैसे कि ऐसा क्यों होता है, धर्म इसका उत्तर देता है। और ये प्रश्न वे हैं, जिनका उत्तर संतोषजनक रूप से विज्ञान भी नहीं दे सकता। धर्म सार्वभौमिक क्यों है इसका उत्तर इसमें है कि एक व्यक्ति अपने जीवन के बारे में उठाता है या जो भी दुर्घटना और अप्रत्याशित स्थितियां आती हैं, उसका जवाब धर्म देता है।

लेकिन हमें यह कहकर निष्कर्ष नहीं निकालना चाहिए कि धर्म सभी समाजों में, सभी तथ्यों में प्रकार्यात्मक है। वास्तविकता यह है कि राजनीतिकरण के लिए यह सबसे अधिक असंवेदनशील है। कई समुदायों ने धर्म को इस भांति प्रभावित किया है कि इसके द्वारा दूसरे समुदायों को दबाया जा सके और उनके बीच में द्वेष पैदा करें। धर्म का प्रयोग राजनीतिक लाभ के लिए भी किया जाता है।

धर्म को प्रभावित करने के तरीकों ने धर्म को मजबूत किया है। इस कारण धर्म शक्तिशाली हो गया है न कि उसका अवसान। सामाजशास्त्री की तरह हमें धर्म के दोनों पहलुओं को देखना चाहिए—वस्तुओं के विश्लेषण का प्रकार्य, संघर्ष के समय में मनोवैज्ञानिक सहायता, सामाजिक व्यवस्था को ज्यों का त्यों बनाए रखने में और लोगों में निर्णय को प्रभावित करना है।

पाठगत प्रश्न 15.5

उचित शब्दों द्वारा रिक्त स्थानों की पूर्ति कीजिये:

(1) पंथ एक ..... समूह है।

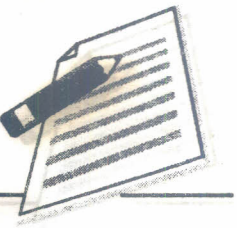

(2) सभी महान् धर्मों में सबसे पुराना धर्म..... है।

(3) झारखण्ड के हो आदिवासी अपनी अवैयक्तिक शक्ति को अपना स्थायी पद... .....कहते हैं।

(4) ..... और .....पवित्र वस्तुएं हैं।

(5) कनफ्यूशियन धर्म ..... धर्म का एक उदाहरण है।

आपने क्या सीखा

- मानव समाज संस्थाओं से बना है।
- चार बुनियादी संस्थाएं हैं। नातेदारी, अर्थव्यवस्था, राजनीतिक व्यवस्था और धर्म।
- प्रत्येक संस्था उसके उद्देश्यों में निहित तथ्यों द्वारा परिभाषित की जाती है।
- प्रत्येक संस्था अन्तर्सम्बन्धित है।
- आर्थिक संस्थाओं का सम्बन्ध उत्पादन, विनिमय, वितरण और उपभोग से है।
- वे संस्थाएं, जो समाज में शक्ति का वितरण करती हैं राजनीतिक संस्थाएं कहलाती हैं।
- धार्मिक संस्थाएं मनुष्यों के साथ सम्बन्ध रखती हैं, उन्हें पवित्र कहते हैं।

पाठान्त प्रश्न

1. अर्थव्यवस्था से आप क्या समझते हैं? आर्थिक संगठन के लक्षणों का वर्णन कीजिए।
2. राजनीतिक व्यवस्था को समझाइए।
3. शक्ति और प्राधिकार में अन्तर क्या है?
4. धर्म के दो प्रकार्य और दुष्कार्य बताइए।
5. धर्म में आने वाले परिवर्तन का अपने शब्दों में वर्णन कीजिए।

पाठगत प्रश्नों के उत्तर

15.1

1. वे अपने काम में बढ़कर होते हैं लेकिन प्रशासन नहीं चलाते।
2. नातेदारी, अर्थव्यवस्था, राजनीतिक व्यवस्था और धर्म।
3. अर्थव्यवस्था का आशय वस्तुओं और सेवाओं का उत्पादन, विनिमय, वितरण और उपभोग करना है।
4. शक्ति व्यक्ति की वह क्षमता है जिसमें वह स्वयं अपने और दूसरों के लिए फैसले लेता है।
5. विश्वास और व्यवहार धर्म के अंग हैं।

15.2

1. अमौद्रिक
2. औद्योगिक
3. उद्यान कृषि
4. अर्द्ध शुष्क एवं रेगिस्तानी
5. शिकारी एवं खाद्य संग्राहक

15.3

1. सही	2. गलत	3. सही	4. सही
5. सही	6. गलत	7. गलत	8. गलत

15.4

(अ) (ii) (ब) (i) (स) (iii)

15.5

(1) विरोध
(2) हिन्दू धर्म
(3) बोंगा
(4) अपने आप से दूर रखना, वर्जित
(5) नैतिक